

नियमसार, आलोचना अधिकार है न! तीर्थकरदेव जैन परमेश्वर का क्या स्वरूप है ? और उस स्वरूप की प्रतीति करनेवाला सम्यग्दृष्टि कैसा है, उसकी बात चलती है। १७८ कलश।

जयति शान्तरसामृतवारिधिप्रतिदिनोदयचारुहिमद्युतिः ।

अतुलबोधदिवाकरदीधितिप्रहतमोहतमस्समितिर्जिनः ॥१७८॥

[श्लोकार्थः] जो (जिन)... वीतराग शान्तरसरूपी अमृत के... शान्तरसरूपी अमृत। आहाहा! आत्मा में शान्तरस अमृत पड़ा है। उसमें से शान्तरस अमृत भगवान ने निकाला। वह कहीं बाहर से नहीं आता। वीतरागता और शान्तरस अमृत जो भगवान को प्राप्त हुए, वे कहीं बाहर से नहीं आते, अन्दर में है। द्रव्यस्वभाव आत्मा का स्वभाव है। अनादि-अनन्त अन्तर शान्तरस और अमृत से भरपूर है। अब यह बात...

समकिती तब कहते हैं, सम्यग्दृष्टि अभी प्रथम, जिसे शान्तरस अमृत का समुद्र प्रभु

आत्मा शान्त-कषायरहित रस-शान्तरस में एकाकार अमृत का समुद्र है। भगवान अरिहन्त परमात्मा (ऐसे हैं), परन्तु उनकी प्रतीति करनेवाला... उन्होंने निकाला कहाँ से ? शान्तरस अमृत भगवान ने निकाला - प्राप्त किया, वह अन्दर द्रव्य में से प्राप्त हुआ है। आहाहा! कठिन बात है। आत्मा का जो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, उसमें शान्तरस, अमृतरस पूर्ण भरा है। उसका अन्तर में अनुभव करना, स्वसन्मुख होकर अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है और वह सम्यग्दृष्टि जीव, तीर्थकर पूर्ण अमृत का कैसा स्वाद-अनुभव में लेते हैं, यह बात करते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

पद्मप्रभमलधारि मुनि हुए। इस नियमसार के करनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य हैं और कुन्दकुन्दाचार्य ने अन्त में ऐसा लिखा है कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। यह ग्रन्थ मेरी भावना के लिये बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। उसकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि हुए, आचार्य नहीं, उन्होंने यह टीका बनायी है, तो वे अपनी बात भी करते हैं कि इस आत्मा शान्तरस और अमृत का धोध पड़ा है। आहाहा! देखो!

शान्त रसरूपी अमृत के समुद्र को (उछालने के लिये)... आहाहा! भगवान को तो प्रतिदिन पूर्ण शान्तरस उछलता है और प्रगट है। समकिति को भी अपने अन्तरस्वरूप का अनुभव होने से शान्तरसरूपी अमृत समय-समय में उछलता है, परन्तु अल्प उछलता है। भगवान को पूर्ण उछलता है। आहाहा! ऐसा धर्म! है ? **प्रतिदिन उदयमान...** वापस भाषा, देखो! आहाहा! भगवान परमात्मा जैन परमेश्वर को प्रतिदिन अमृत का उछाला आता है। जैसे समुद्र में बाढ़ आती है, वैसे अपनी पर्याय में-अवस्था में अनन्त आनन्द का बाढ़ आती है। आहाहा! परन्तु उसे माननेवाले को भी... आहाहा! सम्यग्दृष्टि होता है, तो जो भगवान को माने, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। अपना द्रव्यस्वभाव, उसे भी शान्त रस का अमृत का उछाला प्रतिदिन थोड़ा होता है। ऐसी बात है। समझ में आया ? भगवान को प्रतिदिन पूर्ण शान्तरस अमृत का उछाला आता है। जैसे समुद्र में बाढ़ आती है, वैसे प्रत्येक दिन, प्रत्येक काल में। प्रतिदिन कहा न ? प्रतिदिन अर्थात् हर रोज (शान्तरस उछलता है)। आहाहा!

उदयमान... प्रगट **सुन्दर चन्द्र समान है...** आहाहा! जैसे चन्द्र सुन्दर है, वैसे भगवान को पर्याय में वैसी शीतलता उछलती है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द और

अतीन्द्रिय शान्त रस पूर्ण उछलता है, तो ऐसा समकिति कहता है कि वह जयवन्त वर्तो। क्योंकि उसका नमूना मुझे भी थोड़ा आया है, तो मुझे भी जयवन्त वर्तो। मेरे सम्यग्दर्शन में भी शान्तरस का अनुभव हुआ है, वह भी जयवन्त वर्तो और पूर्ण परमात्मा को जो प्रगट हुआ है, वह भी जयवन्त वर्तो। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है, सूक्ष्म बात है, भाई!

प्रतिदिन... ऐसा शब्द है न? प्रत्येक समय भगवान को अनन्त अमृत का सागर उछलता है। वैसे ही समकित को भी प्रतिदिन अर्थात् प्रत्येक समय में अन्तर में शान्तरस आनन्द पड़ा है, उसकी एक समय की पर्याय में वह भी उछलता है। आहाहा! आनन्द अमृत का अनुभव समकिति को भी होता है। परन्तु वह थोड़ी, अल्प दशा है। भगवान को पूर्ण दशा है। वस्तु तो वह की वह है। दूज का चन्द्र और पूर्णिमा का चन्द्र। चन्द्र के प्रकाश में इतना अन्तर है, बाकी चन्द्र तो वही है। आहाहा!

प्रतिदिन उदयमान... प्रगटरूप। भगवान को पूर्ण अमृत सागर पूर्ण प्रगट हुआ है। समकिति को पूर्ण प्रगट नहीं हुआ परन्तु प्रगट हुआ है। अन्तर शान्तरस के आनन्द का अनुभव अपनी पर्याय में प्रगट-उदयमान प्रगट है। आहाहा! **सुन्दर चन्द्र समान...** जैसे चन्द्र शीतल पूर्ण सोलह कला से खिले, वैसे भगवान को शान्तरस और वीतरागदशा अन्तर में से प्रगट हुई है। किसी बाह्य क्रियाकाण्ड से नहीं हुई। आहाहा! यह बात है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान भी सच्चा नहीं है, उसे चारित्र और व्रत भी सच्चे नहीं हैं।

यहाँ यह कहते हैं। **प्रतिदिन उदयमान सुन्दर चन्द्र समान है और जिसने अतुल ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से...** अन्तर चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर का तेज अन्तर में सर्वज्ञ परमात्मा ने पूर्ण प्रगट किया है। अन्दर पूर्ण भगवान है। अन्दर आत्मा भगवान ही है। पर्याय में दोष है, वस्तु में तो भगवान ही है। आहाहा! **जिसने अतुल ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से मोहतिमिर के समूह का नाश किया है...** आहाहा! ज्ञान की तीव्रता से मोह का नाश किया है। कोई क्रियाकाण्ड करते-करते मोह का नाश किया है, ऐसा नहीं है। है?

जिसने अतुल ज्ञानरूपी... सम्यग्ज्ञान, जो आत्मा ज्ञानरूपी महासागर से भरा है, उसमें से निकालकर **अतुल ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से...** ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से मोहतिमिर के समूह का नाश किया है... मोह का अन्धकार। तिमिर अर्थात् अन्धकार।

मोहरूपी अन्धकार को अन्दर शान्तरस की किरणों द्वारा, ज्ञान द्वारा नाश किया है। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, देखो! इसमें बताया। क्रियाकाण्ड से, दया, दान, व्रत, भक्ति से भगवान सर्वज्ञ हुए, ऐसा नहीं कहा। अशुभ से बचने को शुभ (भाव) आते हैं परन्तु वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! अन्तर ज्ञान और अन्तर में अमृत का सागर शान्तरस दो, ज्ञान लिया। यहाँ शान्तरस लिया, दो में अन्तर एकाग्र होकर भगवान को पूर्ण प्राप्ति होती है, तो कहते हैं कि वह जयवन्त वर्तो। है ?

वह जिन... वीतराग। **जयवन्त हैं।** आहाहा! इसमें भी मर्म है। उस चीज का नमूना अपने में देखा। समझ में आया? जैसे दूज का चन्द्र है, दूज... दूज। उसके पश्चात् पूर्णिमा होती है, इसी प्रकार भगवान पूर्णानन्द पूनमरूप से पूर्ण है परन्तु उसे पहले चन्द्रमा की तरह दूज उगती है, इसी प्रकार धर्मी जीव को, सम्यग्दृष्टि को अपने अन्दर में शान्तरस और आनन्द का अल्प रस का अनुभव होता है। वह न हो तो अकेले राग की क्रियाकाण्ड से धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। भाषा की न? दो (बातें) ली है न?

शान्तरसरूपी अमृत के समुद्र को (उछालने के लिए)... प्रगट हुआ। और उसका नाश किया - मोह का नाश किया, परन्तु नाश किस प्रकार किया? **अतुल ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से...** ज्ञानस्वरूपी भगवान अन्दर, उसमें अन्तर एकाग्र होकर ज्ञान की किरणों से मोह का नाश किया है। ऐसे समकिति भी मिथ्यात्वरूपी मोह का, अपने आत्मा का आनन्द और अमृत और शान्तरस तथा ज्ञानकिरण प्रगट करके... आहाहा! मिथ्यात्व का नाश किया है। उसे समकिति और धर्म की प्रथम दशावाला कहने में आता है। इस श्लोक में तीर्थकर की बात है। परन्तु जयवन्त वर्तता है, इसमें दोनों लिये हैं कि हमारे अनुभव में यह वर्तता है। इस अंश से हम कहते हैं कि परमात्मा को वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान अमृत का सागर और शान्तरस, उस शान्तरस को उछाला, अन्तर में एकाग्र होकर जिसने प्रगट किया। पूर्ण प्रगट किया, वे परमात्मा। अपूर्ण प्रगट किया, वे समकिति या मुनि। परन्तु वह आनन्द और शान्तरस अन्दर प्रगट हुआ, उसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। आहाहा! १७८ श्लोक (पूरा हुआ)।

श्लोक-१७९

(द्रुतविलंबित)

विजितजन्मजरामृतिसञ्चयः प्रहतदारुणरागकदम्बकः ।

अघमहातिमिरब्रजभानुमान् जयति यः परमात्मपदस्थितः ॥१७९॥

इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-
विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ परमालोचनाधिकारः सप्तमः श्रुतस्कन्धः ।

(वीरछन्द)

जिसने दारुण राग नष्ट कर जन्म-जरा-मृत्यु जीते ।

पाप तिमिर को रवि-सम हैं जो निजपद थित जयवन्त रहे ॥१७९॥

[श्लोकार्थः] जिसने जन्म-जरा-मृत्यु के समूह को जीत लिया है, जिसने दारुण राग के समूह का हनन कर दिया है, जो पापरूपी महा अन्धकार के समूह के लिए सूर्य समान है तथा जो परमात्मपद में स्थित है, वह जयवन्त है ॥१७९॥

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) परमालोचनाधिकार नाम का सातवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ ।

श्लोक -१७९ पर प्रवचन

१७९ (श्लोक)

विजितजन्मजरामृतिसञ्चयः प्रहतदारुणरागकदम्बकः ।

अघमहातिमिरब्रजभानुमान् जयति यः परमात्मपदस्थितः ॥१७९॥

आहाहा! अकेली अध्यात्म की बात है, तत्त्व की बात है ।

[श्लोकार्थः] जिसने जन्म-जरा-मृत्यु के समूह को जीत लिया है,... आहाहा! जन्म और मरण, जन्म और मरण। चौरासी के अवतार। उन्हें जिसने-परमात्मा ने जीत लिया है। उन्हें अब जन्म-मरण नहीं है। उनसे सम्यग्दृष्टि होता है, उसे भी जन्म-मरण नहीं है। एकाध-दो भव करना पड़े, वह ज्ञान का ज्ञेय है। आत्मा का ज्ञान होता है, वह सम्यग्दृष्टि। उसे भी जन्म-मरण नहीं है। उसमें भव का अन्त आ गया। सर्वज्ञ को उसी भव में भव का अन्त हुआ, समकिति को एक-दो भव करना पड़े तो भव का अन्त होता है परन्तु फिर अन्तर की पूर्ण दशा प्रगट करेगा। आहाहा! और यहाँ तो जिन (भगवान) को पूर्ण दशा हो गयी है।

जिसने जन्म-जरा-मृत्यु के समूह को जीत लिया है,... आहाहा! वृद्धावस्था, मृत्यु और जन्म भगवान को नहीं होता। है? जन्म-जरा-मृत्यु के समूह को जीत लिया है,... अब जन्म नहीं, अब मृत्यु नहीं और अब... आहाहा! जरा नहीं। जीत लिया है। जिसने दारुण राग के समूह का हनन कर दिया है,... पुण्य और पाप जो राग है; काम, क्रोध, मान, माया, राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि राग। उस सब राग को हनन कर दिया है। दारुण राग के समूह का हनन कर दिया है,... आहाहा! राग का कण है, वह भी दुःखरूप है। शुभराग है, वह भी दुःखरूप है। उसे भगवान ने आत्मा के आनन्द से उस मोह का नाश कर दिया है। समकिति ने भी अपने स्वरूप के अनुभव से मिथ्यात्वरूपी दारुण राग है, उसका नाश कर दिया है। भगवान ने पूर्ण नाश किया है। समकिति ने उसकी भूमिका प्रमाण मोह तिमिर का सम्यग्ज्ञान-दर्शन और अनुभव से नाश किया है। आहाहा!

जो पापरूपी महा अन्धकार के समूह के लिए सूर्य समान है... पापरूपी महा अन्धकार के समूह के लिये सूर्य समान है। आहाहा! अन्धकार को मिटाने में जैसे सूर्य प्रकाशमान है, वैसे भगवान का ज्ञान, अन्धकार का नाश करने में समर्थ है। इसी प्रकार समकिति को भी... साथ में अपनी भी बात करते हैं कि अपनी दशा जो प्रगट हुई है, वह जयवन्त वर्ती और भगवान को पूर्ण प्रगट है, वह भी जयवन्त वर्ती। आहाहा! महा अन्धकार के समूह के लिए सूर्य समान है... आहाहा! मोहरूपी अन्धकार तो उसके पास आता नहीं। समकिति को भी मिथ्यात्वरूपी मोह अन्धकार नहीं आता। आहाहा! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, यह लोगों को ख्याल नहीं है। बाहर के क्रियाकाण्ड में मानते हैं। दया, दान,

व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, वह सब शुभराग है। राग, वह कोई धर्म नहीं है। उस राग को ज्ञानस्वरूप की दृष्टि से समकृति ने नाश किया है। भगवान ने पूर्ण ज्ञान के कारण से सब मोह का नाश किया है। आहाहा!

पापरूपी महा अन्धकार के समूह के लिए सूर्य समान है... भगवान तथा जो परमात्मपद में स्थित है,... आहाहा! वह परमात्मपद में स्थित तो समकृति भी है, परन्तु वह परमात्मपद में अन्दर में थोड़े स्थित हैं और सर्वज्ञ परमात्मा परमात्मपद में पूर्ण स्थित हैं। आहाहा! ऐसी बात है। दुनिया को कहाँ पड़ी है? अनादि से चौरासी लाख योनि में भटकते हैं। चौरासी लाख योनि में एक-एक में अनन्त अवतार किये और अभी मिथ्यात्व नहीं मिटाये, तब तक अनन्त अवतार करेगा। मिथ्यात्व क्या है और समकृत क्या है, इसकी खबर नहीं। आहाहा! यह यहाँ अन्त में कहा। आलोचना का है न? आलोचना का अधिकार है न?

भगवानस्वरूप ज्ञान और आनन्द का नाथ प्रभु, उसे देखना, जानना और मानना, वह आलोचना है। भगवान को पूर्ण देखा, जाना और प्रगट किया। वह पूर्ण सूर्य है। आहाहा! और समकृति आदि जो पंचम गुणस्थानवाले सच्चे श्रावक, वे अन्तर के आनन्द के अनुभव को प्रगट करके मोह के अंश से जितनी शान्ति प्रगट की, उतनी अशान्ति अर्थात् मोह का नाश किया। जयवन्त वर्तो, ऐसा कहा।

यह अधिकार पूरा हुआ।

— ८ —

शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार

गाथा-११३

अथाखिलद्रव्यभावनोकर्मसंन्यासहेतुभूतशुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकारः कथ्यते ।

वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणणिग्गहो भावो ।

सो हवदि प्रायश्चित्तं अणवरयं चैव कायव्वो ॥११३॥

व्रतसमितिशीलसंयमपरिणामः करणनिग्रहो भावः ।

स भवति प्रायश्चित्तं अनवरतं चैव कर्तव्यः ॥११३॥

निश्चयप्रायश्चित्तस्वरूपाख्यानमेतत् । पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितिशीलसकलेन्द्रियवाङ्मनः-
कायसंयमपरिणामः पञ्चेन्द्रियनिरोधश्च स खलु परिणतिविशेषः, प्रायः प्राचुर्येण निर्विकारं
चित्तं प्रायश्चित्तम् । अनवरतं चान्तर्मुखाकारपरमसमाधियुक्तेन परमजिनयोगीश्वरेण पापाटवीपावकेन
पञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहेण सहजवैराग्यप्रासादशिखरशिखा-मणिना परमागममकरन्द-
निष्यन्दिमुखपद्मप्रभेण कर्तव्य इति ।

अब समस्त द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म के संन्यास के हेतुभूत शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त अधिकार कहा जाता है ।

व्रत, समिति, संयम, शील, इन्द्रिय-रोध का जो भाव है ।

वह भाव प्रायश्चित्त है, अरु अनवरत कर्तव्य है ॥११३॥

अन्वयार्थः [व्रतसमितिशीलसंयमपरिणामः] व्रत, समिति, शील और संयमरूप परिणाम तथा [करणनिग्रहः भावः] इन्द्रियनिग्रहरूप भाव [सः] वह [प्रायश्चित्तम्] प्रायश्चित्त [भवति] है [च एव] और वह [अनवरतं] निरन्तर [कर्तव्यः] कर्तव्य है ।

टीका : यह, निश्चय-प्रायश्चित्त के स्वरूप का कथन है ।

पाँच महाव्रतरूप, पाँच समितिरूप, शीलरूप और सर्व इन्द्रियों के तथा मन-वचन-काया के संयमरूप परिणाम तथा पाँच इन्द्रियों का निरोध—यह परिणतिविशेष सो प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त अर्थात् प्रायः चित्त—प्रचुररूप से निर्विकार चित्त। अन्तर्मुखाकार परम—समाधि से युक्त, परम जिनयोगीश्वर, पापरूपी अटवी को (जलाने के लिए) अग्नि समान, पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह के धारी, सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि समान और परमागमरूपी पुष्परस-झरते हुए मुखवाले पद्मप्रभ को यह प्रायश्चित्त निरन्तर कर्तव्य है।

गाथा -११३ पर प्रवचन

अब प्रायश्चित्त अधिकार। प्रायश्चित्त किसे कहना ? आहाहा !

अब समस्त द्रव्यकर्म, भावकर्म... अर्थात् पुण्य-पाप के भाव तथा नोकर्म... अर्थात् शरीर। इनका संन्यास, तीनों का त्याग। आहाहा ! द्रव्यकर्म,... जड़। भावकर्म... राग, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत के परिणाम और नोकर्म... शरीर। तीनों का संन्यास। संन्यास... अर्थात् त्याग। हेतुभूत शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त अधिकार कहा जाता है। दोष लगे और गुरु के पास जाए और प्रायश्चित्त ले, वह तो व्यवहार है, शुभभाव है, पुण्य है। आहाहा ! आत्मा के पास जाए। भगवान् चिदानन्द प्रभु के समीप जाए, अन्तर में अनुभव हो, इसका नाम निश्चयप्रायश्चित्त है। यह निश्चयप्रायश्चित्त का अधिकार है। शुद्धनिश्चय अधिकार कहा है।

वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणणिग्गहो भावो ।

सो हवदि पायच्छित्तं अणवरयं चेष कायव्वो ॥११३॥

व्रत, समिति, संयम, शील, इन्द्रिय-रोध का जो भाव है।

वह भाव प्रायश्चित्त है, अरु अनवरत कर्तव्य है ॥११३॥

टीका : यह, निश्चय-प्रायश्चित्त के स्वरूप का कथन है। ऐसा क्यों कहा ? कि व्रत शब्द पड़ा है। व्रत दो प्रकार के हैं। एक आनन्दस्वरूप भगवान् आत्मा में लीन होना, वह निश्चय व्रत है और बाह्य में विकल्प उठना, पर की दया आदि भाव, वह व्यवहार है,

वह बन्ध का कारण है। आहाहा! इसलिए निश्चय कहा। प्रायश्चित्त के स्वरूप का कथन है। व्यवहार प्रायश्चित्त, वह व्यवहार विकल्प राग है। उसकी बात यहाँ नहीं है क्योंकि वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह कहीं धर्म का कारण नहीं है। अन्तर में निश्चयप्रायश्चित्त (अर्थात्) आनन्दस्वरूप भगवान में व्रत अर्थात् लिपट जाना, लिपट जाना, इसका नाम निश्चयव्रत है। आहाहा! ऐसी बात सुनी न हो। अब उसे ऐसा लगे... बाहर की क्रिया करता हो। ऐसी तो अनन्त बार की है। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' मुनिव्रत अनन्त बार धारण किया दिगम्बर, अट्टाईस मूलगुण लिये, पंच महाव्रत पालन किये परन्तु वह तो आस्रव है, वह तो दुःख है। आहाहा! उससे रहित आत्मज्ञान...

विकल्प से, राग से रहित अन्दर चिदानन्द प्रभु भगवान आत्मा में लीन होना, इसका नाम व्रत है। यह निश्चयव्रत है। दया, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प उठे, वह पुण्य है। वह पुण्य, बन्ध का कारण है और यह प्रायश्चित्त, अबन्ध का कारण है। आहाहा! दुनिया की वर्तमान प्रवृत्ति के समक्ष कहीं पता नहीं लगता।

पाँच महाव्रतरूप,... यह पाँच महाव्रत कौन? अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में एकाग्रता होना और वीतराग पर्याय प्रगट होना, इसका नाम महाव्रत कहा जाता है। आहाहा! निश्चय महाव्रत यह है। व्यवहार महाव्रत में तो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प उठता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, वह धर्म नहीं है। है? **पाँच महाव्रतरूप,...** आहाहा! राग की उत्पत्ति न करना और वीतरागदशा की उत्पत्ति होना, यह अहिंसाव्रत है। आहाहा!

सत्य। सत्य वस्तु जो त्रिकाली चिदानन्द प्रभु है, उसमें जो रागादि हैं, उन्हें दूर करके सत्य वस्तु की परिणति प्रगट करना, इसका नाम सत्यव्रत है। उसे सत्यव्रत कहते हैं। आहाहा! और चोरी के राग का त्याग, वह व्यवहार। यहाँ तो राग है, वह मेरा है—ऐसी चोरी का त्याग। राग 'मेरा' (है, ऐसा) माने वह चोर है। आहाहा! समयसार में आता है न? परवस्तु को अपनी माने, वह चोर है। रागादि परवस्तु है, उन्हें अपना माने, वह चोर है। आहाहा!

ब्रह्मचर्य। ब्रह्म अर्थात् आनन्द। अतीन्द्रिय आनन्द में चर्य अर्थात् रमना, वह

ब्रह्मचर्य है। शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह तो शुभभाव है। आहाहा! शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, बालब्रह्मचारी हो तो भी वह तो शुभभाव है, पुण्य है। निश्चय ब्रह्मचर्य तो ब्रह्म अर्थात् आनन्द। अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर चरना, अन्दर रमना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है।

अपरिग्रह। राग की भी पकड़ नहीं। राग से रहित भगवान् आनन्दकन्द को पकड़कर स्थिर होना, इसका नाम अपरिग्रहव्रत कहा जाता है। बात-बात में अन्तर है। क्या करे? वस्तु ऐसी है। अनादि काल से भटकता है। अनन्त-अनन्त काल हुआ। अनन्त भव अभी तक किये। उसके पहले भव.. भव.. भव.. भव.. भव.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. कर चुका है। एक-एक नरक में, तिर्यच के, पशु के अरे! देव के भी अनन्त भव कर चुका है। परन्तु आत्मज्ञान बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आया।

आत्मा क्या चीज़ है? यह पुण्य-पाप के राग से रहित है। नवतत्त्व में पुण्य-पाप है, वह तो बन्ध का कारण भिन्न है। उससे रहित ज्ञायकतत्त्व है, उसका भान नहीं किया और उसका यदि भान करे तो उसके आनन्द का स्वाद आये बिना नहीं रहे। 'आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पाया।' पंच महाव्रत लिये, अट्टाईस मूलगुण पालन किये, परन्तु आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पाया। वह आस्रव और पंच महाव्रत दुःखरूप है। आहाहा! गजब बात है। विकल्प है, राग है। वह बात यहाँ नहीं है।

यहाँ तो... आहाहा! **पाँच महाव्रतरूप**,... आत्मा का आनन्द और ज्ञानस्वरूपी भगवान् में एकाग्र होना, लीनता होना, राग से भिन्न पड़ना, उसका नाम पंच महाव्रतरूप कहने में आता है। निश्चय पंच महाव्रत, वह प्रायश्चित्त है। आहाहा! **पाँच समितिरूप**,... ऐसे बाहर में देखकर चलना, विचारकर बोलना, वह तो व्यवहार है, पुण्य है। समिति=सम+इति - प्रवृत्ति। राग से निवृत्त होकर अन्तर आनन्द और ज्ञान की समिति अर्थात् परिणति प्रगट करना, इसका नाम समिति कहा जाता है। आहाहा! **पाँच समिति**... ईर्यासमिति। अन्तर में बराबर जैसा चैतन्यस्वरूप है, उसे देखकर उसमें रमना, वह ईर्यासमिति है। आहाहा! भाषासमिति—सत्यस्वरूप आत्मा त्रिकाल सच्चिदानन्द प्रभु में लीनता (होना), वह भाषासमिति है।

मुमुक्षु : वहाँ भाषा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही भाषा। वहाँ भाषा है ही नहीं। भाषा है नहीं, वहाँ भाषासमिति।

निश्चय अन्दर स्वरूप में भाषारहित होकर अन्तर आनन्द का सागर प्रभु, चैतन्य रत्नाकर समुद्र भरा है। आत्मा में तो गुण का समुद्र भरा है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें रमे। वह यहाँ समुद्र है। यह समुद्र बाहर का है। यहाँ देह में भगवान है, वह आनन्द का समुद्र है, अमृत का सागर-समुद्र है। आहाहा! कभी कीमत कहाँ की है? बाहर के जगत की, धूल की कीमत और पाँच-पच्चीस लाख रुपये (रुपये)। आज उसमें आया है, भाई! मासिक कहते हैं न? क्या कहलाता है? अपना आत्मधर्म। उसमें वहाँ रुपये कितने खर्च हुए, नाम दिया है। जतीशभाई ने। वहाँ नैरोबी गये थे न? पच्चीस हजार से किसी ने कम दिया ही नहीं। आया है। पढ़ा है। था सही। यह? यह नया आया है। एक व्यक्ति ने साढ़े पाँच लाख रुपये हैं। साढ़े पाँच लाख देकर मूर्ति स्थापित की है। अभी हम वहाँ अफ्रीका गये थे न! छब्बीस दिन रहे थे। पैंतालीस लाख रुपये इकट्ठे किये। छब्बीस दिन में पैंतालीस लाख। अभी हम गये थे न? छब्बीस दिन रहे थे। नैरोबी, अफ्रीका। वह भी यहाँ लिया है। जतीशभाई ने लिया है।

मुमुक्षु : आपका पुण्य-प्रभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग वस्तु है। परन्तु यह तो उसमें आया। अपने महाजन लोग वहाँ हैं। छह हजार महाजन लोग हैं। व्याख्यान में गुजराती भाषा चलती है, हिन्दी नहीं। सब हिन्दी लोग थे। अपने मुमुक्षु के साठ घर हैं। मन्दिर कभी बनाया नहीं था तो मन्दिर बनाते हैं। पच्चीस लाख का मन्दिर बनानेवाले हैं और पैंतालीस लाख का तो दान इकट्ठा हुआ है। बड़े गृहस्थ हैं। छब्बीस दिन रहे परन्तु लोगों को बहुत प्रेम। बहुत दूर, तीन-तीन हजार मील। तीन हजार मील दूर अफ्रीका। अभी पौष महीने में गये थे। परन्तु वहाँ बात इतनी कि साढ़े पाँच लाख देकर लक्ष्मीचन्दभाई ने एक मूर्ति पधरायी। साढ़े पाँच लाख। तो उन्हें कहा, कि तुमने साढ़े पाँच लाख की मूर्ति पधरायी, इसलिए धर्म होगा, ऐसा नहीं है। वह तो अशुभ के बचने को शुभभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : साढ़े पाँच लाख देने के बाद कहा या साढ़े पाँच लाख देने से पहले कहा था?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको पहले से ही कह दिया था। वहाँ तो अपने आठ तो करोड़पति मुमुक्षु हैं। मुमुक्षु हैं। साठ घर हैं, उनमें आठ तो करोड़पति हैं। दूसरे भी पन्द्रह लाख, बीस लाख, दस लाख, पच्चीस लाख ऐसे तो साठ घर में कितने ही हैं। वहाँ महँगाई भी बहुत है। यहाँ तो पहले से कहा था, तुम चाहे जितने पैसे खर्च करो तो उसमें से धर्म होगा या भगवान के दर्शन करने से धर्म होगा, ऐसा नहीं है। इन भगवान के दर्शन करने से शुभभाव पुण्य होगा। यह भगवान जो आत्मा चिदानन्द... आहाहा! उसका आश्रय लेना और उसकी स्थापना करना कि मैं आनन्द और शुद्ध चैतन्य हूँ, रागादि मैं नहीं – ऐसी भावस्थापना करना, वह वास्तविक धर्म है। आहाहा! वहाँ तो बहुत लोग आते थे। बहुत, वहाँ परदेश में कौन जाए? परन्तु उन लोगों की बहुत माँग थी, इसलिए छब्बीस दिन रहे थे। जिस मकान में उतरे थे, वह पन्द्रह लाख का मकान था। पन्द्रह लाख का तो गृहस्थ का मकान। उसके पास पैसे तो बहुत थे। बेचारा पूरे दिन मेरे पास बैठे। नरम व्यक्ति, बहुत नरम। उस सब धूल में क्या है? कहा। बीस लाख या पन्द्रह लाख या करोड़पति। आहाहा!

एक गाँव में सात लाख की बस्ती है। उसमें साढ़े चार सौ तो करोड़पति हैं। साढ़े चार सौ। और पन्द्रह अरबपति हैं। कहा, यह सब धूल है, यह मिट्टी है, अजीब है, पुद्गल है। उसे मेरा मानना, यह मिथ्यादृष्टि है। जड़ को अपना मानना... जड़ चीज़ तो पर है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! दुनिया तो पैसा खर्च करे तो धर्म मनावे। यहाँ तो साठ लाख इकट्ठे किये, साठ लाख क्या, पाँच करोड़ इकट्ठे करो न तुम! वह शुभभाव-पुण्य है। अशुभ से बचने के लिये ऐसा भाव आता है परन्तु उसमें धर्म हो जाए, (ऐसा नहीं है)। ऐसा तो अनन्त बार किया है।

यहाँ तो कहते हैं कि पाँच समिति अन्तर की। आहाहा! ऐषणासमिति, आहार-पानी की नहीं। अन्दर के आत्मा को खोजना—शोधना, वह ऐषणासमिति है। आहाहा! निश्चय है न? निश्चयप्रायश्चित्त है न? यह निश्चय है। आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं कि अन्तर में भगवान आत्मा देह से भिन्न, पुण्य-पाप के राग से भिन्न, ऐसा जो भगवान अन्दर चैतन्यस्वरूपी परमात्मा है, उसकी शोध करके रमणता करना, इसका नाम ऐषणासमिति है। आहाहा! यह पाँचों ही समिति निश्चय है। आहाहा! पठववहु रागादि को छोड़ना और स्वरूप में रमना, यह चौथी समिति है। आहाहा! पाँच समिति है न? इन चार के पश्चात् कौन सी?

मुमुक्षु : आदाननिक्षेपण ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदाननिक्षेपण । वस्तु को लेना और छोड़ना, यह व्यवहार । यह आदाननिक्षेपण । आत्मा को आदान अर्थात् ग्रहण करना और राग को छोड़ना । आहाहा ! यहाँ ऐसा कहते हैं । अरे रे ! ऐसा सुनने को मिलता नहीं । जिन्दगी चली जाती है । देह की स्थिति पूरी हो जाएगी । आत्मा तो रहेगा । देह की स्थिति पूरी हो जाएगी । उसकी अवधि है, उसका तो निश्चित हो गया है । जिस समय में देह छूटनी है, जिस क्षेत्र में, वह निश्चित हो गया है । केवलज्ञानी ने तो देखा है परन्तु उसकी आयुष्य की स्थिति में निश्चित हो गया है । जिस समय में, जिस काल में, जिस संयोग से लाख डॉक्टर-वाँक्टर उतरे, उनके इंजेक्शन में कुछ चले, ऐसा नहीं है । देह की स्थिति पूरी होने को आवे, वहाँ आत्मा तो चला जाएगा । कहाँ जाएगा ? वस्तु है या नहीं ? अस्ति तत्त्व है, कहाँ जाएगा ? भान नहीं तो भटकने में जाएगा । आहाहा ! नरक और निगोद । एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि लट, चींटी और मकोड़ा । आहाहा ! यहाँ कहते हैं कि ऐषणा अर्थात् छोड़ना । राग को छोड़कर स्वरूप में स्थिर होना, वह आदाननिक्षेपण । आहाहा ! यह निश्चय है न ? निश्चय है ।

पाँच महाव्रतरूप, पाँच समितिरूप, शीलरूप... शील अर्थात् आत्मस्वभाव । आत्मा का स्वभाव शान्तरस और आनन्द है । उसे अन्दर में प्रगट करना, इसका नाम शीलरूप है । अकेला शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, वह शीलरूप नहीं । ऐसा तो अनन्त बार पालन किया है । बालब्रह्मचारीरूप से अनन्त बार हुआ है । आहाहा ! उससे पुण्य बन्धन होता है । यह आत्मा ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चरना—रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है । उसे यहाँ निश्चयसमिति में डाला है । समझ में आया ? शील में डाला है । शील - शील । आहाहा !

और सर्व इन्द्रियों के तथा मन-वचन-काया के संयमरूप परिणाम... यह प्रायश्चित्त । क्या कहा ? **सर्व इन्द्रियों...** पाँचों ही इन्द्रियों को रोककर अनीन्द्रिय ऐसा भगवान आत्मा, उसमें एकाकार रहना... आहाहा ! उसका नाम संयम का परिणाम है । **मन-वचन-काया के संयमरूप परिणाम...** मन-वचन-काया का लक्ष्य छोड़कर अन्दर संयमरूप परिणाम (होना) । **तथा पाँच इन्द्रियों का निरोध...** पाँच इन्द्रियों को रोकना । आहाहा ! यह परिणतिविशेष, सो प्रायश्चित्त है । लो ! इसे प्रायश्चित्त कहा है । आहाहा !

दिगम्बर मुनि हैं। उन्होंने यह टीका की है। कुन्दकुन्दाचार्य ने गाथा (रची है)। वे तो अन्तिम गाथा में ऐसा बोले, यह पुस्तक मैंने मेरी भावना के लिये बनायी है। मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। तुम समझो, न समझो तुम्हारी इच्छा। अन्तिम गाथा है। मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। देखो न! अन्तिम है न? १८७, १८७ गाथा है।

‘णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं।’ - १८७ गाथा। है? ‘णियभावणा’ मेरी भावना के कारण से। ‘मए कदं’ मैंने किया है। ‘णियमसारणामसुदं’ ‘णच्चा जिणोवदेसं’ वीतराग के उपदेश को भलीभाँति जानकर किया है। ‘पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं’ पहले और पश्चात् के दोषरहित है। पहले कुछ कहा और बाद में कुछ कहा, ऐसा यहाँ नहीं है। पूर्वापर दोषरहित है। यह मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है, कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो - तीसरे नम्बर में आये। वे कहते हैं कि यह तो मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! उसमें यह आया। आहाहा!

यह परिणतिविशेष, सो प्रायश्चित्त है। निश्चय से वह प्रायश्चित्त है। अपना स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर / समुद्र, ऐसी चीज में अन्तर रमना, उसमें जम जाना, उसका नाम प्रायश्चित्त है। आहाहा! ऐसा सुनकर कभी किया नहीं, इसलिए कठिन लगता है। सत्य तो यह है। बाकी सब दुनिया की असत् की कल्पनाएँ हैं। आहाहा!

प्रायश्चित्त अर्थात् प्रायः चित्त—प्रचुररूप से निर्विकार चित्त। प्रायश्चित्त की व्याख्या की है। आहाहा! प्रचुर अर्थात् जोरदाररूप से निर्विकारी चित्त, निर्विकारी ज्ञान। पुण्य और पाप के विकल्परहित का निर्विकारी ज्ञान, निर्विकारी प्रतीति। उसका नाम यहाँ प्रायश्चित्त, सत्य और निश्चय तथा सत्य कहा जाता है। आहाहा! पूरे दिन संसार में पड़े हैं, धन्धे में, स्त्री-पुत्र में। उसे यह कान में भी नहीं पड़ता और कान में पड़े तो लगता है कि यह क्या? यह तो क्या कहते हैं? ऐसा लगता है। सत्य तो यही है। बाकी सब असत्य की बातें हैं। व्यवहार की बातें जितनी हैं, वे असत्य हैं और पुण्यबन्ध का कारण है। निश्चय का सत्य तो यह है।

अपने स्वभाव का आश्रय लेकर चिदानन्द प्रभु आत्मा... आहाहा! अतीन्द्रिय शान्त

और आनन्द का सागर, उसमें एकाग्र होना, उसे निश्चय प्रायश्चित्त कहा जाता है। उसका वास्तविक पाप उसे टलता है। अज्ञानी की बाहर की वृत्ति के व्यवहार प्रायश्चित्त से पुण्य बन्धन है। आहाहा! यह परिणतिविशेष, सो प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त अर्थात् प्रायः चित्त—प्रचुररूप से निर्विकार चित्त। आहाहा! पुण्य-पाप के राग से रहित, आत्मा में शुद्धता में प्रचुर रमणता, प्रचुर एकाग्रता। आहाहा! है? प्रचुररूप से निर्विकार चित्त। चित्त अर्थात् ज्ञान। निर्विकार ज्ञान जहाँ होता है, उसे यहाँ प्रायश्चित्त कहा जाता है। आहाहा! शब्द-शब्द में अन्तर है। समकित्ती और मिथ्यादृष्टि की बात ही एकदम अलग होती है। मिथ्यादृष्टि व्यवहार में धर्म मनाता है। भगवान कहते हैं कि वह तेरा व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। मुझे माने तो भी तुझे पुण्य है, ले! ऐसा भगवान कहते हैं। मुझे माने तो मैं परद्रव्य हूँ। मुझे तू माने तो राग है। आहाहा! तुझे तू मान। शुद्धचैतन्यघन आनन्दकन्द अन्दर अमृत का सागर प्रभु ध्रुव नित्यानन्द प्रभु अन्दर विराजमान है। उसमें लीनता, निर्विकारता का नाम प्रायश्चित्त कहा जाता है।

अन्तर्मुखाकार... अन्तर्मुखाकार। आहाहा! पुण्य और पाप का आकार बहिर्मुख है, उससे रहित अन्तर्मुखाकार आनन्दस्वरूप के आकार में... आहाहा! **परम—समाधि से युक्त,...** शान्ति। समाधि अर्थात् शान्ति। राग के कणरहित, पुण्य-पाप के भावरहित आत्मा की शान्ति, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। वे बाबा समाधि लगाते हैं, वह नहीं। आहाहा! ऐसी समाधि, उसका नाम प्रायश्चित्त है। आहाहा! है? **अन्तर्मुखाकार परम—समाधि से युक्त,...** आहाहा! अन्तर्मुख। देह का लक्ष्य नहीं, पुण्य-पाप के भाव का लक्ष्य नहीं। उससे रहित भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ भरपूर है, उसमें से वीतरागता और सर्वज्ञ होता है। ऐसी चीज़ पर अन्तर्मुख होना। आहाहा!

अन्तर्मुखाकार परम—समाधि से युक्त, परम जिनयोगीश्वर,... आहाहा! परम जिनयोग। जिन्होंने स्वरूप में योग-साधन किया है। बाबा-योगी करते हैं, वह नहीं। वीतराग ने कहा, ऐसे आत्मा में योग जोड़ दिया है। आहाहा! वे **परम जिनयोगीश्वर, पापरूपी अटवी को (जलाने के लिए) अग्नि समान,...** आहाहा! उन्हें सच्चा प्रायश्चित्त होता है, ऐसा कहते हैं। **पापरूपी अटवी को (जलाने के लिए) अग्नि समान, पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित...** आहाहा! पाँचों ही इन्द्रियाँ, उनकी ओर का बाह्य झुकाव, उससे रहित। अन्तर्मुख अतीन्द्रिय भगवान के प्रति सन्मुखता-झुकाव। आहाहा! **पाँच**

इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह के धारी,... मुनि हैं। मुनि को एक देह ही होता है। दूसरा वस्त्र-पात्र कुछ नहीं होता। आहाहा! आत्मा के आनन्द में वे तो रमते हैं। आहाहा! है?

मुमुक्षु : पिच्छी-कमण्डल तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पिच्छी-कमण्डल हो, वह अपवादित है। आनन्द में रमे और शरीरमात्र परिग्रह हो। शरीर छूटता नहीं इसलिए। पिच्छी, कमण्डल बाह्य है।

पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र परिग्रह के धारी,... देखो! एक देह छूटता नहीं। इतने आनन्द के नाथ में रमते हैं, उन्हें मुनि कहते हैं कि जो अतीन्द्रिय आनन्द में उत्कृष्ट शान्ति से रमते हों, जिन्हें विकल्प का आदर नहीं है, जिन्हें नग्नदशा का भी आदर नहीं है। आहाहा!

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि... प्रायश्चित्त में धर्मात्मा मुनि की बात की है। **सहज वैराग्यरूपी...** पुण्य और पाप के राग से भी भिन्न वैराग्यरूपी। पुण्य और पाप में रक्त है, उससे छूटकर आत्मा में रक्त। पुण्य-पाप से विरक्त और आत्मा में रक्त। आहाहा! अब ऐसी बातें। **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर...** सहज वैराग्य का महल, बड़ा मकान। उसके शिखर का शिखामणि। आहाहा! जिन्होंने वीतरागता प्रगट की है, जिन्होंने राग का तो नाश किया है, ऐसी जो अन्तरदशा, आहाहा! **और परमागमरूपी पुष्परस-झरते हुए...** आहाहा! स्वयं की बात करते हैं। दिगम्बर मुनि हैं। जंगल में रहते हैं। हजार वर्ष, नौ सौ वर्ष पहले। यह नौ सौ वर्ष पहले की यह टीका है। मूल श्लोक हैं, वे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। उन्हें तो दो हजार वर्ष हुए।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि समान और परमागमरूपी पुष्परस...** परमागम महा निश्चयस्वभाव। ऐसा जो पुष्परस झरते हुए... आहाहा! मुनि के मुख में से परम आनन्द झरता है, कहते हैं। निश्चय की बात करते हुए अन्दर से आनन्द आता है। है? **परमागमरूपी पुष्परस-झरते हुए मुखवाले पद्मप्रभ को...** स्वयं का नाम दिया है। (टीका) करनेवाले पद्मप्रभ दिगम्बर मुनि हैं। हे पद्मप्रभ! स्वयं को कहते हैं। तेरा आनन्दरस अन्दर भरा है, तू अब वहाँ रह। आहाहा! **पद्मप्रभ को यह प्रायश्चित्त निरन्तर कर्तव्य है।** हे मुनि! स्वयं स्वयं को कहते हैं कि यह प्रायश्चित्त तुझे निरन्तर कर्तव्य है। यह निश्चय प्रायश्चित्त तुझे निरन्तर कर्तव्य है। आहाहा! है?

परमागमरूपी पुष्परस-झरते हुए मुखवाले पद्मप्रभ को... 'पद्मप्रभ' कहते हैं कि तेरे मुख में से तो परम आगम झरता है। यह परम आगम है। टीका परम आगम है। आहाहा! यह प्रायश्चित्त निरन्तर कर्तव्य है। मुनि को तो इस वीतरागता में रमणता, यह निरन्तर कर्तव्य है। आहाहा! ऐसे स्वयं अपने को कहते हैं। हे पद्मप्रभमलधारि! हे मुनि! स्वयं स्वयं को कहते हैं। है न?

मुमुक्षु : छठवें गुणस्थान में आना सुहाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही होता है। छठा गुणस्थान... मुनि की दशा तो, बापू! दूसरी है। वह कोई अलौकिक बातें हैं। अभी सामायिक का ठिकाना नहीं। राग से धर्म मनावे, पुण्य से धर्म मनावे, वह तो मिथ्यात्व है।

यहाँ तो कहते हैं, हे पद्मप्रभमलधारि! मुनि स्वयं को कहते हैं, हों! तुझे यह प्रायश्चित्त... आहाहा! द्रव्य-वस्तु जो स्वभाव भगवान आत्मा है, उसमें रहना, यह निरन्तर तेरा कर्तव्य है। आहाहा! हे पद्मप्रभमलधारि! ऐसा कहकर स्वयं को कहते हैं। आहाहा! तुझे यह प्रायश्चित्त निरन्तर कर्तव्य है। आहाहा! समकित्ती की अन्तरदशा में भी थोड़ा आनन्द और थोड़ी शान्ति है, परन्तु अभी दूसरे रागादि हैं, उतना बन्ध है। जितनी आत्मा के आश्रय से शुद्धता प्रगट की, उतना धर्म है। मुनि को तो पूर्ण धर्म है। थोड़ा महाव्रतादि का विकल्प आता है तो उससे भिन्न अपनी चीज़ का अनुभव करते हैं। वह निरन्तर कर्तव्य है। महाव्रतादि के परिणाम, व्यवहार वह तेरा निरन्तर कर्तव्य नहीं। ऐसा आया न? आहाहा!

तुझे निरन्तर यह प्रायश्चित्त का कर्तव्य है। आहाहा! पंच महाव्रत और पाँच समिति, गुप्ति कही न? समिति और शीलरूप, इन्द्रियों का निरोध, मन-वचन-काया के संयमरूप परिणाम, वह तेरा निरन्तर कर्तव्य है। यह धर्म है। यह जन्म-मरण छोड़ने की पद्धति है। बाकी दूसरे को बाहर की क्रियाकाण्ड में सन्तोष मनावे, वह स्वतन्त्र है, जिनमार्ग नहीं, वह वीतरागमार्ग नहीं। वीतरागमार्ग तो राग से रहित अन्दर में रमे, वह वीतरागमार्ग है। राग में रमे, वह वीतरागमार्ग नहीं है। आहाहा!

इसलिए यह मुनि कहते हैं, हे मुनि! तुझे यह कर्तव्य है। अन्तर में आनन्दसहित रमना। आहाहा! महाव्रत और समिति-गुप्ति अन्तर आनन्दस्वरूप में है, वह तेरा निरन्तर कर्तव्य है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)